इस्लाम में पर्दे का तसव्वुर

क़ाएदे मिल्लत मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी, जनरल सेक्रेट्री मजलिस उलमा-ए-हिन्द

इस्लाम की शुरुआत से लेकर आज तक, इस्लाम दुश्मन ताक़तें इस्लाम पर हमला कर रही हैं। इसमें कभी असलहों का इस्तेमाल किया गया और कभी ज़बानो क़लम का। लेकिन इस ज़माने में साईंन्सी ईजादात की वजह से ये हमले ज़्यादा ख़तरनाक और वसीअ् सूरत इख़्तियार कर गये हैं। ऐसे असलहे हैं कि लाखों इन्सानों को चन्द सेकेण्डों में मौत की नींद सुला दें और ज़राए इबलाग़ का निज़ाम इतना फैल गया है कि चन्द मिन्टों में किसी भी ग़लत और ज़हरीले बयान से करोड़ों के ज़हन मसमूम किये जा सकते हैं।

जहाँ और बहुत से इस्लामी अहकाम पर एतेराज़ात की बौछार है, वहाँ इस्लाम में पर्दे के निज़ाम को ख़ास तौर से निशाना बनाया जा रहा है। पर्दे के मसले पर हमारा चन्द गिरोहों से सामना है। कुछ तो वह ग़ैर मुस्लिम हैं जो इस्लाम के खुले हुए दुश्मन हैं और उनका मक़सद इस्लाम को बदनाम करना और लोगों को इससे मुतनफ़्फ़िर करना है, वह सिरे से ही पर्दे के मुख़ालिफ़ हैं और इसको वहशत, बरबरियत, ख़िलाफ़े इन्सानियत और ख़वातीन पर ज़ुल्म गरदानते हैं और बराहे रास्त दीने इस्लाम पर हमला आवर हैं। कुछ वह हैं, कि हैं तो मुसलमान मगर मग़रिब ज़दा हैं अगरचे पर्दे की यकसर मुख़ालिफ़त की हिम्मत नहीं है मगर मग़रिब के नक़्क़ादों को मुतमइन करने की कोशिश में कहते हैं कि पर्दा सिर्फ़ नज़र का है और पर्दे से मुराद सिर्फ़ शर्मो हया है ताकि क़दामत परस्ती और तंग नज़री के इल्ज़ाम से अपने को बचाएं और उन्हें खुले दिलो दिमाग़ का और तरक़्क़ी परसन्द होने का सर्टिफिकेट मिल जाए। मोतरिज़ीन में एक तबक़ा वह है जो सिर्फ़ नाम से मुसलमान हैं। ऐसे लोग मज़हब से बिल्कुल बेबहरा हैं, ख़्वाहिशाते नफ़्सानी के बन्दे और हवस के ग़ुलाम हैं। दिल लुत्फ़े नज़ारा का शैदा है और फिरदौस गोश के साथ-साथ जन्नत निगाह की तलाश है। पर्दे को मुल्लाओं की गढ़ंत कहते हैं और दिली तमन्ना है कि औरतें सिर्फ़ बेपर्दा ही नहीं बल्कि कम से कम लिबास के साथ घरों से बाहर आ जाएं।

हम सबसे पहले क़ुरआन मजीद के ज़रिये गुफ्तगू करेंगे कि क़ुरआन मजीद ने पर्दे का क्या मेयार पेश किया है क्योंकि अहकामे इस्लाम का अव्वलीन मसदर और सरचश्मा कलामे इलाही है। क़ुरआन मजीद में रब्बे हमीद का इरशाद हैः "ऐ रसूल[स०] मोमिनीन से कह दीजिये कि वह अपनी आँखें झुकाए रखा करें" आय-ए-करीमा मुतलक़ है यानी इसमें कोई क़ैद नहीं कि किसी ख़ास वक़्त पर आँखें झुका लिया करें या हर वक़्त आँखे मूँदे रहा करें। किसी ख़ास चीज़ के देखने की मुख़ालिफ़त है या हर चीज़ पर देखने की रोक है? किसी बात की तख़सीस नहीं है। मगर हर इन्सान की अक़्ल हुक्म करेगी कि ये मतलब हरगिज़ नहीं है कि किसी शै पर निगाह न डालें और कोई शै देखा ही न करें। अगर ऐसा हुक्म होता तो फिर अल्लाह ने आँखें अता ही क्यों कीं? क़ुव्वते बसारत दी ही क्यों। वह कौन सी शै है जिसे न देखने के वास्ते आँखें झुका लेने का हुक्म है इसका बेहतरीन फैसला शाने नुज़ूल करेगी। शाने नुज़ूल आयत की ये थी कि एक मरतबा अन्सार में से एक शख़्स किसी रास्ते से गुज़र रहा था सामने से एक जवान और हसीन औरत आती हुई दिखाई दी। हुस्न की कशिश ने

मजबूर किया और ये देखने में महव हो गया यहाँ तक कि वह पास से गुज़र गई मगर तब भी उसकी तबियत सैर नहीं हुई। ये देखता भी जाता और अपनी मंज़िल की तरफ़ क़दम भी बढ़ाता जाता था। चन्द क़दम आगे बढ़ा और एक दीवार से टकरा गया जिसमें शीशा लगा हुआ था और उसका चेहरा ज़ख़्मी हो गया। अब होश आया तो देखा पूरा लिबास ख़ून से तर है। इसी हालत में रसूलुल्लाह सल-लल्लाहु अलैहि व आलिही वसल्लम की ख़िदमत में हाज़िर हुआ, पूरा वाक़िआ बयान किया और शिकायत की कि हुजूर[स०] ये औरतें बेपर्दा घूमती हैं और कशिशे हुस्न मजबूर कर देती है देखने पर, इसी से आज मेरी ये गत हुई। उस वक़्त ये आयत उतरीः ''ऐ रसूल[स०] मोमिनीन से कह दीजिये कि वह अपनी आँखें झुकाए रखा करें'' तो अब मतलब साफ़ हुआ कि किस चीज़ के देखने से मना किया गया है। आय-ए-करीमा से नतीजा निकला कि मर्दों को औरतों पर नज़र करना हराम है। क़ुरआन मजीद की आयत यूँ भी हुक्म दे सकती थी कि मोमिनीन औरतों को न देखा करें लेकिन इन्तिहाई एहतेमाम ये किया गया कि नज़रें झुका लिया करें ताकि असल रुयत की हुरमत इस क़दर अहम हो जाए कि जो मुक़द्दमा अद्मे रुयत का उसी को वाजिब कर दिया गया। और महज़ इसी हुक्म पर इक्तेफ़ा नहीं की बल्कि औरतों के लिए इरशाद हुआः ''ऐ रसूल[स०] औरतों से भी कह दें (कि उन पर मर्दों का देखना हराम है) अपनी आँखें झुकाए रखें।'' (सूर-ए-नूर) आपने देखा कि क़ुरआन मजीद का इन्तिहाई इन्तिज़ाम, इधर मर्दों को हुक्म कि औरतों को न देखें उधर औरतों को हुक्म कि मर्दों को न देखें। एक ही कलमा दोनों के वास्ते है। तो अब इस हुक्म के बाद अक़्ल बताती है कि एक और हुक्म की ज़रूरत है कि जिसके बाद दिक़्क़तें न हों बल्कि आसानी हो काम न बिगड़े बल्कि बन जाए और उस्र व हरज लाज़िम न आए। जब मजलिसों में, महफिलों में, रास्तों में, दुकानों में, मदरसों में, स्कूलों और कालेजों में दोनों ही मौजूद हैं, औरतें भी हैं और मर्द भी और हुक्मे क़ुरआनी की पाबन्दी, निगाहें बिल्कुल झुकाए रखना हैं, तो सवाल ये है कि आगे का रास्ता कैसे नज़र आए? वहाँ एक शख़्स अन्सारी का चेहरा बेपर्दगी की वजह से ज़ख़्मी हुआ था, यहाँ पता नहीं कितने लोग पर्दे की वजह से ज़ख़्मी हो जायेंगे। साथ ही साथ शैतान का वसवसा भी और हुस्न की हशर सामानियाँ भी, लेहाज़ा निगाह उठ ही जायेगी। इधर नज़र से नज़र लड़ी, उधर फ़साद का समान मुहैय्या हो गया। एक निगाह के लड़ने से कितने फ़साद पैदा हो जायेंगे। इसीलिए पर्दे का हुक्म हुआ ताकि मुस्तहकम दीवारें हायल रहें और नक़ाब के हिसार खिंचे रहें। आयत की रोक अलग हो, हुरमत की दीवार अलाहेदा हो फिर ग़ज़्ज़े बसर का हुक्म भी हो और नक़ाब के पर्दे भी पड़े रहें। जब मर्द और औरत दोनों को निगाह करने से मना किया गया तो ज़रूरी हुआ कि किसी एक को पर्दे में रखा जाए ताकि आयत पर अमल आसान हो जाए। अब सवाल ये होता है कि किसको पर्दे में रखा जाए, औरतों को या मर्दों को? फ़ौरन अक़्ल का मुक़तज़ा होगा कि पर्दा औरतों के लिए बेहतर और आसान तर है। इसकी पहली वजह ये है कि जो कशिश औरतों में होती है वह मर्दों में नहीं और दूसरी वजह ये है कि औरतें फितरतन शर्मीली होती हैं और हया से अपनी निगाहों को उमूमन झुकाए रखती हैं (मगरये कि ग़ैर फ़ितरी माहौल की आदी हो जाएं) अब आय-ए-करीमा आगे बढ़ती है और हुक्म होता हैः ''ऐ रसूल[स०] ईमान लाने वाली औरतों से कह दीजिये कि बदकारियों से अपनी हिफ़ाज़त करें और अपनी कोई ज़ीनत किसी मर्द के सामने ज़ाहिर न करें मगर ये कि इत्तेफ़ाक़न ज़ाहिर हो जाएं'' इतना ही कहना काफ़ी था मगर आयत ने और ताकीद कर दी ''अपनी ओढ़नियाँ इस क़दर लटकाएं कि सीने तक पहुँच जाएं'' अच्छा बस, अब तो आयत ख़त्म हो जाती। मगर नहीं, ताकीद पर ताकीद और हुक्म पर हुक्म ''और अपनी ज़ीनतों को हरगिज़ ज़ाहिर न करें अलबत्ता सिर्फ़ अपने शौहरों के सामने''। इसी तरह बाप, ख़ुसर और अपनी औलाद और शौहर की औलाद, अपने भाई या भांजे और भतीजे, इन सबके सामने ज़ीनतों के ज़ाहिर करने में कोई हरज नहीं।

बक़िया.......पेज 10 पर

हटाना पड़ेगा, जो आपस में इज़्तेराब पैदा करती हों। इसी तरह उन मुफ़सिद ज़ाकिरों और ख़तीबों के ख़िलाफ़ भी मुहिम चलानी होगी, जो मुसलमानों के दरमियान नफ़रतों का ज़हर घोलने के लिए मिंबरे रसूल[स०] का बेजा इस्तेमाल करते हैं। ज़माने की इस्लाह से पहले अपने घर का सुधारना ज़रूरी है।

इसमें कोई शक नहीं कि मैं भी इसी लखनऊ में पला बढ़ा हूँ, जहाँ 115 साल से शिया-सुन्नी फ़िरक़े के लोग लड़ते आए थे और वहाँ का ज़हरीला माहौल ऐसा था कि शिया और सुन्नी महल्ले अलग-अलग आबाद हो गये। हालात ऐसे थे कि सुन्नी अक्सरियत वाले महल्लों से शिया गुज़रते हुए डरते थे और शियों के महल्लों में सुन्नियों का जाना मुश्किल था। अल्लाह का शुक्र है कि अब लखनऊ में पहले जैसे हालात नहीं। वहाँ शियों और सुन्नियों ने समझ लिया है कि हम इख़्तेलाफ़ात के बावजूद एक साथ ज़िन्दगी गुज़ार सकते हैं। हरचन्द निफ़ाक़ डालने वाली ताक़तें अब भी सरगर्म हैं। इन ताक़तों की निशानदही करने के लिए मैंने 1997[ई०] में ''शिया-सुन्नी क़ज़िया, कितना मज़हबी कितना सियासी'' के उनवान से एक किताब लिखी थी और उस किताब की इतनी पज़ीराई हुई कि उसके चार एडिशन हाथों हाथ फ़रोख़्त हो गये। मैंने उस किताब में बताया था कि आज़ादी से क़ब्ल किस तरह अंग्रेज़ों ने शिया-सुन्नी तफ़रक़े को हवा दी और आज़ादी के बाद जनसंघ का क्या रोल रहा... लखनऊ जैसे छोटे शहर में इस्राईल की क्या दिलचस्पी हो सकती है, इसका तफ़सीली तज़किरा मैं उस सह्यूनियत शिकन सफ़रनामे में कर चुका हूँ, जो मैंने फिलस्तीन के दौरे से वापसी पर लिखा था और जिसको ''रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा'' के लाखों क़ारेईन (पाठकों) ने दिलचस्पी के साथ पढ़ा था।[1] मुझे फ़ख़्र है कि मैं एक ऐसे अख़बार से वाबस्ता हूँ, जो इलाक़ाई या मक़ामी हदों में क़ैद नहीं, बल्कि इसका दायरा शिमाली हिन्दुस्तान के कोहिस्तानी इलाक़ों से लेकर जुनूबी हिन्दुस्तान के साहिलों तक और ख़लीजे बंगाल से लेकर बहरे अरब के कनारों तक फैला हुआ है, वेब एडिशन की मारफ़त ''रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा'' की रसाई दुनिया के हर कोने तक हो गई है।

(बशुक्रिया रोज़नामा राष्ट्रीय सहारा 'उर्दू' 31 मार्च 2010[ई०])

(1) ये सफ़रनामा हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन, इमामबाड़ा गुफ़रानमाब लखनऊ से किताबी सूरत में प्रकाशित हो चुका है। शायक़ीन हज़रात इदारे से राब्ता क़ायम करें।

बक़िया....... इस्लाम में पर्दे का तसव्वुर

मुलाहेज़ा फ़रमाइये कि सिर्फ़ जिस्म ही नहीं बल्कि जो चीज़ें जिस्म की ज़ीनत हैं, उनके वास्ते भी मुमानेअत है कि किसी ग़ैर मर्द के सामने ज़ाहिर न करें। आयत में पूरी तफ़सील है जो क़ुरआन मजीद में देखी जा सकती है। मगर आयत की ज़बान यहाँ भी नहीं रुकती है बल्कि इरशाद होता है: ''और रास्ता चलते में अपने पैर ज़मीन पर मार कर न चलें (कि जो ज़ीनतें उनकी छुपी हुई हैं उनका पता चल जाए)''। ये है ग़ैरते इलाहिया और ये है इन्तिहाई तालीमे हिजाब कि अगर औरत ज़ेवर पहने हुए हो तो वह ज़ेवर मर्दों को दिखाना कैसा, इस ज़ेवर की आवाज़ भी न सुनाई दे। जिस ख़ालिक़ को ये गवारा नहीं कि औरत के ज़ेवर की आवाज़ मर्द सुनें, वह कब गवारा करेगा कि ज़ेवर दिखाये जाएं और जब ज़ेवर का बेपर्दा होना गवारा नहीं, तो वह कब गवारा करेगा कि वह हाथ पैर दिखाये जाएं जिनमें ज़ेवर हैं और जो हाथों और पैरों का ज़ाहिर होना जायज़ न रखे तो वह इसकी कब इजाज़त देगा कि मुँह दिखाये जाएं। इस आयत के बाद अब ज़रूरत तो नहीं है कि कोई और आयत पेश की जाए। साहेबाने ईमान और इन्साफ़ के लिए इस आयत ही में वह ज़बरदस्त ज़ख़ीरा मौजूद है जो पर्दे की अज़मत को रोज़े रौशन और आफ़ताबे निस्फ़ुन्नहार की तरह अयाँ कर देता है मगर मसअले की अहमियत को देखते हुए इन्शाअल्लाह अगले हिस्सों में मज़ीद अक़्ली और नक़्ली दलाएल पेश होंगे। वमा अलैइना इल्लल बलाग।

(बशुक्रिया राष्ट्रीय सहारा (उर्दू) 26 फ़रवरी 2010[ई०])